पर्यावरण संरक्षण में सहायक भारत का पारंपरिक ज्ञान

डॉ0 ओम किशोर सिंह
असिस्टेण्ट प्रोफेसर, वनस्पति विज्ञान विभाग
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मगरहां, मीरजापुर - 231306

सारांश:
यह सर्वविदित है कि यदि किसी देश में किसी प्रकार के पर्यावरणीय असंतुलन की स्थिति होती है तो उसका प्रभाव न केवल उस क्षेत्र विशेष के जन्तुओं, वनस्पतियों, अथवा मनुष्यों पर पड़ेगा, बल्कि उसका प्रभाव उस क्षेत्र या देश की सीमाओं के बाहर भी परिलक्षित होगा। अतः पर्यावरणीय प्रदूषण की समस्या किसी क्षेत्र, प्रदेश, जाति, धर्म, या समुदाय की न होकर विश्व के सभी देशों की एक साझी समस्या है। पर्यावरण को स्वस्थ व संरक्षित रखने के लिए हमारे चारो तरफ एक समृद्ध जैव-विविधता की आवश्यकता है। भारतवर्ष की सनातन संस्कृति वैदिक काल से ही पर्यावरण संरक्षण की पोषक रही है। भारत की यह संस्कृति और पारंपरिक ज्ञान पर्यावरण संरक्षण में सहायक है।

मुख्य शब्दः पर्यावरण, प्रदूषण, जैव-विविधता, सनातन संस्कृति, पारंपरिक ज्ञान

पर्यावरण संरक्षण वर्तमान वैज्ञानिक युग का सर्वाधिक चर्चित बिंदु है। यद्यपि प्रत्येक मनुष्य यह जानता है कि वह अपने को इस पर्यावरण से अल्प समय के लिए भी अलग रख कर जीवित नहीं रह सकता फिर भी वह लगातार अपने कार्यकलापों द्वारा पर्यावरण के सूक्ष्म संतुलन में अवांछनीय परिवर्तन करनें से बाज नहीं आता। इन परिवर्तनों व पारिस्थितिकीय क्षति को पूरित कर देने की प्रकृति के पास क्षमता होती है लेकिन एक सीमा तक। प्राकृतिक संसाधनो का अनियंत्रित दोहन किसी भी पारितंत्र के स्थायित्व को प्रभावित करता है।

अठ्ठारहवीं शताब्दि के अंत में जब औद्योगिक क्रांति का उदय हुआ तभी से मनुष्य ने उद्योग के सभी क्षेत्रों में व्यापक विकास किया। इण्डियन इनस्टीट्यूट ऑफ इकॉलाजी एण्ड इनविरानमेण्ट, नई दिल्ली के अध्यक्ष प्रो0 प्रिय रंजन त्रिवेदी के अनुसार - "विकास की प्रक्रिया प्राकृतिक संपदा को आघात पहुँचा रही है। यह समस्या केवल साधनों के अभावग्रस्त होने तक सीमित नहीं है अपितु इसका सीधा संबन्ध प्राकृतिक संपदा के प्रति मानव की शोषण प्रवृत्ति है जो निरंतर बढ़ती जा रही है।" आज मनुष्य ने अपनी सुविधाओं का ध्यान रखते हुए एयरकंडीशन, रेफ्रीजरेटर एवं मोबाइल इत्यादि अपनी कृत्रिम सुविधाओं की अनेक वस्तुओं का निर्माण कर लिया है। मनुष्य को एक क्षण सोचना चाहिए कि जब हमें प्राकृतिक वातावरण में गर्मी लगती है तब हमारे शरीर से विषाक्त पदार्थ पसीने के रूप में निकलते हैं लेकिन एयरकंडीशन चलाकर हम उसे शरीर से बाहर निकलने नहीं देते। रेफ्रीजरेटर में शीतल किया हुआ जल पीनें पर उसमें तैलीय पदार्थों का पाचन अत्यंत क्षीण हो जाता है। मोबाइल टावरों से निकली हुइ तरंगे पक्षियों के लिए अत्यंत घातक होती हैं जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण हमारे घर, आंगन व बगीचों से विलुप्त होती हुई गौरैया चिड़ियाँ हैं। क्लोरोफ्लोरोकार्बन गैसें जैसे - फ्रेऑन सन् 1930 के पूर्व अस्तित्व में ही नहीं थी। इस मानव निर्मित गैस का प्रयोग एयरकंडीशन, रेफ्रीजरेटर एवं एरोसॉल स्प्रे में किया जाता है। आज यह गैस न केवल ग्रीन हाउस गैस है बल्कि यह सूर्य की पराबैगनीं किरणों से रक्षा करने वाली ओजोन पर्त को भी क्षतिग्रस्त कर रही हैं। स्पष्ट है कि मनुष्य विकास तो कर रहा है लेकिन उसके विकास का हर एक चरण पारिस्थितिकीय ह्रास (इकोलॉजिकल डिज़ास्टर) के मूल्य पर हो रहा है। कल-कारखानें स्थापित होने के कारण तथा बढ़ते हुए शहरीकरण के फलस्वरूप वनों का क्षेत्रफल संकुचित होता चला गया। वर्तमान में हमारे देश में वनों का क्षेत्रफल में 33 प्रतिशत के मानक स्तर से काफी नीचे हो गया है। औद्योगिक क्रांति से पहले अर्थात् मात्र कुछ सौ वर्षों पूर्व मानव की जनसंख्या प्रकृति से काफी हद तक सामंजस्य स्थापित किए हुई थी। धन प्राप्ति की बढ़ती हुई भूख, सुख-सुविधा के साधनों के जुटानें की ललक, अधिक से अधिक भू भाग पर अपना वर्चस्व कायम रखनें की उत्कट इच्छा नें न केवल मनुष्य की बुद्धि को दूषित किया अपितु धीरे-धीरे उसके चरित्र में भी परिवर्तन उत्पन्न किया।[1]

प्राचीन काल में न तो इतनी बड़ी जनसंख्या थी और न ही और न ही मानव की इतनी बढ़ी हुई भोगलिप्सा। प्राचीन भारतीय ऋषियों नें तपोवन बनाकर प्रकृति जगत के साथ मनुष्य जाति को संपृक्त किया। आदि काल से ही हमारे देश में धरती आाकाश, वृक्ष, नदियाँ तथा विभिन्न जीव जन्तुओं में देवत्व की अवधारणा और उनके पूजन की परंपरा रही है। आदिकाल से चली आ रही हमारी पारंपरिक मान्यताएं मात्र कोरी कल्पनाओं पर नहीं बनी हैं अपितु उनके पीछे वैज्ञानिक तथ्य भी हैं। हमारे देश की संस्कृति और पारंपरिक ज्ञान पर्यावरण संरक्षण में कहीं न कहीं सहायक है।

वृक्षों में देवत्व की भावना –

भारतीय संस्कृति में वृक्षों को देवता माना गया है। वास्तव में वृक्ष मानवता के रक्षक है। रामचरितमानस में उल्लिखित है कि - "तुलसी तरुवर विविध सुहाए । कहुं-कहुं सिय कहुं लखनु लगाए।।"[2] हमारे प्राचीन ग्रंथकारों की धारणा थी कि संसार में ऐसी कोई वनस्पति नहीं है जिसमें औषधीय गुण न हो इसलिए हर एक वृक्ष वंदनीय है। महर्षि वेदवयास विरचित श्रीमद्भावतमहापुराण में वृक्षों को महिमामंडित करते हुए कहा गया है कि - "अहो एषां वरं जन्म सर्वप्राण्युपजीवनम्। सुजनस्येव धन्या महीरूहा येभ्यो निराषा यान्ति नार्थिनः।।"[3] अर्थात् समस्त प्राणियों को जीवन प्रदान करने वाले इन वृक्षों का जन्म सज्जनों की भांति कितना श्रेष्ठ है जिनके पास से कोई याचक निराश नहीं लौटता है। विक्रमचरित नामक ग्रंथ में वृक्षों की सज्जनता कुछ इस प्रकार वर्णित की गयी है - "छायामन्यस्य कुर्वन्ति तिष्ठन्ति स्वयमातपे। फलान्यपि परार्थाय वृक्षाः सत्पुरुषाः इव।।"[4] अर्थात् वृक्ष तो सज्जनों के सदृश परोपकारी होते हैं। स्वयं धूप में खड़े रह कर भी वे दूसरों को छाया प्रदान करते हैं। इनके फल भी दूसरों के उपयोग के लिए ही होते हैं। मत्स्य पुराण में तो यहाँ तक कहा गया है कि - "दशकूपसमो वापि, दशवापी समो ह्रदः। दशह्रदः समो पुत्रः दशपुत्रसमो द्रुमः।।"[5] अर्थात् दस कूओं के बराबर एक बावड़ी, दस बावड़ियों के बराबर एक तालाब, दस तालाबों के बराबर एक पुत्र तथा दस पुत्रों के बराबर एक वृक्ष है। संत कवि तुलसीदास कृत रामचरितमानस के उत्तरकाण्ड में वृक्ष, संत, नदी, पर्वत व पृथ्वी को समान रूप से परोपकारी वर्णित करते हुए कहा गया है कि - "संत, विटप, सरिता, गिरि, धरनी । परहित हेतु इनन्हि कै करनी।।"[6] सुबोध इन्स्टिट्यूट ऑफ मैनेजमेण्ट एण्ड कैरियर स्टडीज़ राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर के निदेशक प्रोफेसर मानचंद खंडेला (2008)7 राजस्थान गुजरात व मालवा की लोक संस्कृतियों में वर्णित वाग्वर प्रदेश (बाँसवाड़ा, डूंगरपुर व आस-पास के जनजाति बहुल इलाके) के पर्यावरण व वृक्ष की महत्ता का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि - "आज भी इस क्षेत्र में ऐसे पौधे हैं जिनकी पूजा की जाती है। बहुत सी वनस्पतियों के औषधीय महत्व को यहाँ के जनजातीय लोग जानते है और किस्म-किस्म की जड़ी बूटियों को विभिन्न उपचारों में प्रयोग भी करते हैं।"

पृथ्वी को माता का सम्मान –

अथर्ववेद का यह सूत्र - "माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथ्व्याः" हमारी इसी आस्था को इंगित करता है कि पृथ्वी मेरी माँ है और में पृथ्वी का पुत्र हूँ। इस पवित्र धरा पर चलने के लिए हमें इस पर पैर रखना हमारी विवशता है । अतः विवश होकर किए जाने वाले इस अपराध के लिए इस प्रातः कालीन प्रार्थना से हम धरती माँ से क्षमा माँगते हैं- "समुद्रवसने देवी पर्वतस्तन मंडले। विष्णु पत्नी नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्वमें।।" अर्थात् सागर को वस्त्र रूप में धारण करने वाली, पर्वत जिसके वक्ष प्रदेश हैं, भगवान विष्णु की पत्नी पृथ्वी देवी को मैं पैर से स्पर्श करनें के लिए क्षमा माँगता हूँ। बंकिम चंद्र चट्टोपाध्याय कृत बंगला उपन्यास आनन्दमठ में भारत भूमि की "वंन्देमातरम्" कह कर वंदना की गयी है।

पर्वत भी देवात्मा –

धरती के कुल क्षेत्रफल का औसतन पाँचवा भाग पर्वतों से घिरा है। प्राचीन भारतीय कवियों, दार्शनिकों व प्रकृति वैज्ञनिकों ने हिमालय को विशेश महत्व एवं सम्मान दिया है। महाकवि कालीदास ने कुमार संभवम् नामक काव्य के प्रथम श्लोक में भारतवर्ष के उत्तर दिशा में स्थित इस पर्वत को देवात्मा कह कर सम्बोधित किया है - "अस्य उत्तरस्यां दिशि देवात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः। पूर्वापरौ तोयनिधि वगाह्य स्थितः पृथिव्याः इव मानदण्डः।।"' महाकवि का

कथन वैज्ञानिक दृष्टि से भी समीचीन सिद्ध होता है क्योंकि इस पर्वत की उंची चोटियाँ साइबेरिया की ओर से आने वाली सर्द, शुष्क हवाओं को आगे नहीं बढ़ने देती तथा अपनें देश के अंदर की ऊष्ण नम मानसूनी हवाओं को अंदर ही अंदर समेटे रखने में मदद करती हैं। अगर हिमालय न होता तो सम्भवतः पूर्वोत्तर भारत भी मनुष्य के रहनें के लिए इतना अनुकूल या रिहायशी न होता। प्रो0 प्रिय रंजन त्रिवदी एवं प्रो0 उत्तम कुमार सिंह (2008)[9] के अनुसार - "हिमालय पर्वतों की एक विस्मयकारी श्रिखला है जो पूर्व-पश्चिम से दक्षिण-उत्तर तक लगभग 2500 कि. मी. तक विस्तृत है तथा इसकी चैड़ाई 250 से 300 कि. मी. के बीच है। हिमालय में करीब 15000 हिमखण्ड (ग्लेशियर्स) हैं।" कभी न सूखने वाली नदियों में सतत जल की आपूर्ति करने वाले ये हिमखण्ड यदि जलवायु परिवर्तन के फलस्वरूप पिघल जायेंगे तो मृदु जल का भंडार ही लगभग समाप्त हो जाएगा साथ ही हमारे अनेक समुद्र के तटवर्ती क्षेत्र डूब जायेगें।

देवी या माता के रूप में नदियाँ भी स्तुत्य –

गोपेश्वर (उत्तराखण्ड) के सुविख्यात पर्यावरणविद् चण्डी प्रसाद भट्ट (2017)[10] के अनुसार - "हिमालय से तीन नदी प्रणलियाँ निकलती हैं। ये तीनों जल-प्रणलियां देश की 43 प्रतिशत भूमि में फैली हुई हैं। साथ ही नेपाल में जन्म लेनें वाली चार दर्जन के लगभग छोटी-बड़ी नदियां भी गंगा की सहायक घाघरा, बूढ़ी गंडक, गंडक, कोसी आदि में समाहित होती हैं। इन नदियों में देश के सकल जल का 63 प्रतिशत जल प्रवाहित होता है। ये नदियाँ ही भारत की भाग्य विधाता हैं।" इस प्रकार भारत की जलवायु और अनोखी जैव विविधता में प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से इन विषाल पर्वत मालाओं और उनसे निकलनें वाली सदानीरा नदियों का बहुत बड़ा योगदान है। मेरे विचार से इतनी बड़ी जनसंख्या वाला अपना देश विश्व के शक्ति-सम्पन्न राष्ट्रों के समक्ष एक सम्मानजनक स्थिति में नहीं होता यदि हमारा देश नदियों का देश न होता, यदि यह एक कृषि प्रधान देश न होता और यदि यहाँ इतनी प्रचुर जैव विविधता न होती। नदियाँ अपनें आस-पास के वातावरण को इतना सुहावना बनाती है कि उनके योगदान को समझनें वाला कोई भी व्यक्ति अपनी जन्मभूमि के पास से नदी के गुजरनें पर स्वयं को धन्य अनुभव करता है। रामचरित मानस में भी उल्लिखित है- "जन्म भूमि मम पुरी सुहावनि। उत्तर दिसि सरयू बहि पावनि।।"[11] अथर्ववेद में भी नदियों की अर्चना की गयी है - "सिंधुपत्नीः सिंधुराज्ञीः सर्वा या नद्यवस्थन। दत्त नस्तस्य भेषजं तेना वो भुनजामहे।।"[12] अर्थात् आप समुद्र की पत्नियाँ हैं। समुद्र आपका सम्राट है। हे निरंतर बहती हुई जलधाराओं, आप हमें मुक्त होनें वाले रोग का निदान दें, जिससे हम स्वजन निरोग हो कर अन्नादि बल देनें वाली वस्तुओं का उपभोग कर सकें। नदी तभी बलावान होती जब उसमें प्रवाह होता हैं। वैज्ञानिक दृष्टि से भी नदी के जल में तभी शुद्धता होती जब उसमें पर्याप्त आक्सीज़न घुलती रहे। नदी पर बाँध बनाए जाने से उसका प्रवाह क्षीण हो जाता है और वहीं से नदी में रुग्णता आने लगती है। बहाव बंद होने से नदी के पानी में सड़न पैदा हो जाती है और जल पीनें के योग्य नहीं रह जाता। स्थिर जल में पड़े हुए पत्ते, टहनियां व जानवरों की लाशें एवं अन्य पदार्थ सड़ कर मीथेन गैस पैदा करते हैं । मीथेन गैस एक ग्रीन हाउस गैस है जिसके कारण वैश्विक ताप वृद्धि होती है।

इस प्रकार निष्कर्ष यह निकलता है कि औद्योगीकरण के उपरान्त वृक्ष तेजी से हटाए गए जिससे वनों का क्षेत्रफल काफी कम हुआ। जहाँ हमारे देश में सकल भूमि का 33 प्रतिशत क्षेत्र वन होना चहिए वही 19 प्रतिशत भूभाग ही वन है। वनों के कटनें से धरती की उपजाऊ मिट्टी भी नष्ट हो जाती है। पर्वतों के ग्लेशियर्स पर भी जलवायु परिवर्तन का बहुत प्रभाव पड़ रहा है जिससे ग्लेशियर्स अचानक से एक साथ पिघल सकते हैं। परिणामस्वरूप हमारे विभिन्न समुद्र तटीय क्षेत्र डूब जाएगें और साथ ही साल भर मृदु जल से भरी हुई सदानीरा नदियाँ बरसाती नालों में तब्दील हो जाएगी। अतः हमारा यह दायित्व बनता है कि प्राचीन काल से चली आ रही पर्यावरण पोषक परंपराओं का आधुनिकता और विकास इस के दौर में एकदम से अतिक्रमण कर हम आगे न बढ़े अपितु प्रकृति से समन्वय करके जीना सीखें।

संदर्भ सूची:

1. प्रो0 प्रिय रंजन त्रिवेदी व प्रो0 उŸाम कुमार सिंह (वर्ष 2008): पर्यावरण प्रभाव मूल्यांकन. (ISBN: 978-81-7139-226-1) - प्रकाशक ज्ञानदा प्रकाशन (पी. एण्ड. डी), नई दिल्ली. संस्करणः 2008, पृ0सं0: 01
2. श्रीमद्गोस्वमीतुलसीदासजीविरचित् श्री रामचरितमानस (टीकाकारः हनुमान प्रसाद पोद्दार, प्रकाशकः गोबिन्दभवन कार्यालय, गीताप्रेस, गोरखपुर-273005, संस्करण 61वाँ), पृ0सं0: 462
3. वेदव्यास विरचित श्रीमद्भागवतमहापुराण. दशम् स्कन्ध, अध्याय 22, श्लोक 33.
4. विल्हण कृत विक्रमचरित. श्लोक 65.
5. मत्स्य पुराण खण्ड 04, अध्याय 49, श्लोक 512.
6. श्रीमद्गोस्वमीतुलसीदासजीविरचित् श्री रामचरितमानस (टीकाकारः हनुमान प्रसाद पोद्दार, प्रकाशकः गोबिन्दभवन कार्यालय, गीताप्रेस, गोरखपुर-273005, संस्करण 61वाँ), पृ0सं0: 903.
7. मान चंद खंडेला (वर्ष 2008): पर्यावरण संरक्षण एवं सामाजिक दायित्व (ISBN: 978-81-7132-560-3) - पोइन्टर पब्लिशर्स (पी. एण्ड. डी.), जयपुर-302003, राजस्थान, संस्करणः 2008, पृ0सं0: 87.
8. प्रो0 प्रिय रंजन त्रिवेदी व प्रो0 उात्तम कुमार सिंह (वर्ष 2008): पर्यावरण शिक्षण (ISBN: 978-81-7139-228-5) - प्रकाशक ज्ञानदा प्रकाशन (पी. एण्ड. डी.), नई दिल्ली. संस्करणः 2008, पृ0सं0: 122-123.
9. चण्डी प्रसाद भट्ट (वर्ष 2017) "पिघलते, दहकते हिमालय का सच" हिन्दुस्तान (हिन्दी दैनिक, वाराणसी संस्करण, प्रकाशन तिथिः 09 सितंबर 2017), पृ0सं0ः 12.
10. श्रीमद्गोस्वमीतुलसीदासजीविरचित् श्री रामचरितमानस □टीकाकारः हनुमान प्रसाद पोद्दार, प्रकाषकः गोबिन्दभवन कार्यालय, गीताप्रेस, गोरखपुर-273005, संस्करण 61वाँ□, पृ0सं0ः 788
11. अथर्ववेद सूक्त 2, मंत्र सं. 03.